P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-6* ISSUE-9*(Part-1) May- 2019
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

पंचायती राज की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

योगेन्द्र सिंह
सहायक आचार्य,
राजनीति विज्ञान विभाग,
वीणा मेमोरियल पी.जी. कॉलेज, करौली,
राजस्थान, भारत

सारांश

लोकतंत्र मानव गरिमा, व्यक्ति की स्वतंत्रता, समानता एवं राजनीतिक निर्णयों में जनभागीदारी के कारण शासन का श्रेष्ठतम रूप माना जाता है। लोकतंत्र राजनीतिक परिस्थिति या शासन चलाने की पद्धति मात्र नहीं है अपितु यह सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक परिस्थिति एक विशेष मनोवृति एवं जीवन जीने की विशिष्ट पद्धति भी है। लोकतंत्र का सार जनता की सहभागिता एवं नियन्त्रण में निहित है। लोकतंत्र का आधार शासन में जन–सहभागिता के साथ ही शासन का निम्न स्तर तक विकेन्द्रीकरण है। उसी भावना का साकार रूप पंचायती राज व्यवस्था है।

मुख्य शब्द : लोकतंत्र, पंचायती राज, विकेन्द्रीकरण, अधिनियम, बौद्धकाल, मुगलकाल आदि।

प्रस्तावना

जनता और उसके प्रतिनिधियाँ, शासक एवं शासितों के बीच सम्पर्क अपेक्षाकृत निरन्तर, सतर्कतापूर्ण एवं अधिक नियंत्रणपूर्ण होते हैं। लोकतन्त्र की सर्वश्रेष्ठ पाठशाला और उसकी सफलता की सबसे अधिक गारण्टी स्थानीय स्वायत्त शासन का संचालन है।

स्थानीय स्वशासन संस्थाओं का अस्तित्व किसी न किसी रूप में सदैव हर काल और हर राज्य में विद्यमान रहा है। इस स्थानीय स्वशासन के अभितंत्र के रूप में पंचायती राज संस्थाओं के अतीत से वर्तमान कालखण्ड तक के विकास का अध्ययन निम्नांकित शीर्षकों में किया जा सकता है–

प्रागैतिहास काल

पूर्व पाषाणकालीन सभ्यता का अर्द्ध–मानव छोटे–छोटे समूहों में रहता था और बुजुर्ग आदमी समूह का मालिक होता था। उसके दिशा निर्देशन में ही समूह कार्य करता था। मध्य पाषाणकुलीन सभ्यता का आरम्भ ई.पूर्व 8000 के आसपास हुआ। इस युग में बस्तियाँ बननी प्रारम्भ हो गई थी और बस्ती का वयोवृद्ध व्यक्ति अन्य प्रौढ़ व्यक्तियों से सलाह मशविरा कर बस्ती के लिए कार्य करता था। विकसित कृषि व्यवस्था और स्थायी ग्राम व्यवस्था का सम्भवतः ईसा से 5000 वर्ष पूर्व मध्य–पूर्व में जन्म हुआ। भारत में स्थायी संस्कृति के प्राचीनतम् अवशिष्ट बलोचिस्तान और निचले सिन्ध में पाए जाने वाले खेतिहर ग्रामों के हैं जो सम्भवतः ई.पू. चौथी शताब्दी के अन्त से प्रारम्भ होते हैं। इस प्रारम्भिक ग्रामों में ही ग्रामीण स्वशासन के बीज नजर आते हैं। सिन्धु घाटी सभ्यता का राजनीतिक संगठन काफी उन्नत रहा। हण्टर महोदय का मानना है कि सिन्धुवासियों का शासन जनतंत्रात्मक था। शासन सत्ता किसी एक व्यक्ति अथवा राजा में केन्द्रित न होकर जनता के प्रतिनिधि शासक के हाथ में रही होगी। स्टीलर का मानना है कि यह पुजारी वर्ग के हाथ में रही होगी। किसी निश्चित साक्ष्य के अभाव में यह कहना कठिन है कि देश की प्रमुख सत्ता किसके हाथ में थी परन्तु यह अनुमान स्वाभाविक प्रतीत होता है कि केन्द्रीय सत्ता का विकेन्द्रीकरण कर दिया गया था और लोगों को स्थानीय शासन का दायित्व सौंप दिया गया था।

प्राचीन भारतीय साहित्य में पंचायत शब्द को संस्कृत भाषा के पंचायतन से परिभाषित किया गया है। जिसका अर्थ होता है– पाँच आध्यात्मिक व्यक्तियों का समूह। स्वाभाविक रूप से पांच शब्द विषम होने के कारण समाज को दो भागों में विभाजित नहीं किया जा सकता है। इस प्रकार निर्णय या मत विभाजन एक पक्ष की ओर सुनिश्चित हो सकेगा। साथ ही भारतीय समाज के सांस्कृतिक व्यवस्थान्तर्गत विभिन्न धर्म समूहों में पाँच अंक का महत्वपूर्ण स्थान है। पंच महाभूत, पंचतत्व, पंचामृत, पांच ज्ञानेन्द्रियाँ, पांच कर्मेन्द्रियाँ, पंच महायज्ञ और मन्दिर निर्माण की नागर शैली में पंचायतन स्वरूप आदि पाँच अंक के महत्त्व को प्रदर्शित करते हैं।

प्राचीन भारत में ''पंच सो परमेश्वर' की मान्यता तथा वेदों में पांच व्यक्तियों के समर्पित रूप में यज्ञ करने पर पाक्षिक कार्यों की सफलता सम्बन्धी वैदिक मान्यता के दृष्टान्त पंचायत से सम्बन्धित पुनीत भावना को उजागर करते हैं। वैदिक साहित्य में ग्रामीण स्थानीय स्वशासन की संगठित व्यवस्था के कुछ संदर्भ पत्र–तत्र मिलते हैं। इस समय में ग्राम पंचायत की सबसे छोटी इकाई थी। इसका मुखिया 'ग्रामीणी' कहलाता था। ग्रामिणी ग्राम के श्रेष्ठ एवं वयोवृद्ध लोगों से सलाह कर अपना कार्य करता था। यही ग्राम पंचायत का आदिम स्वरूप था। उस समय एवं पशुपालन प्रमुख व्यवसाय थे, अतः ग्रामों का नगरों की अपेक्षा अधिक महत्व था और यातायात की कठिनाई के कारण प्रत्येक ग्राम स्वावलम्बी होता था।''

विकेन्द्रीकरण आयोग की रिपोर्ट

1907 में विकेन्द्रीकरण पर रॉयल कमीशन की स्थापना की गई थी, जिसकी रिपोर्ट 1909 में प्रकाशित हुई। इस रिपोर्ट में निम्न संस्तुतियाँ थी।''

1. गाँव को स्थानीय स्वशासन की बुनियादी इकाई माना जाए और प्रत्येक गांव में पंचायत हो। नगरीय क्षेत्रों में नगरपालिकाओं का निर्माण किया जावे।
2. स्थानीय निकायो में निर्वाचित सदस्यों को पर्याप्त होना चाहिए।
3. नगरपालिका अपना अध्यक्ष चुने, किन्तु जिलाधीश को स्थानीय जिला परिषद् का अध्यक्ष बने रहना चाहिए।
4. नगरपालिकाओं को आवश्यक सत्ता प्रदान की जानी चाहिए, जिससे वे कर निर्धारित कर सकें और कुछ न्यूनतम धनराशि को संरक्षित कोष में जमा करके अपना बजट बना सकें।
5. बडे नगरों को एक पूर्णकालिक नामित अधिकारी की सेवायें उपलब्ध करायी जायें। स्थानीय निकायों का अपने कर्मचारियों पर पूर्ण नियंत्रण होना चाहिए। केवल नौकरी की सुरक्षा की दृष्टि से कुछ पूर्वाभ्यास किए जा सकते हैं।
6. स्थानीय निकायों पर बाहरी नियंत्रण परामर्श सुझाव और लेखा परीक्षण तक सीमित होना चाहिए।
7. नगरपालिकाओं की ऋण लेने की शक्ति पर सरकार का नियंत्रण बना रहना चाहिए और नगरपालिका की सम्पत्ति को पट्टे पर देने अथवा बेचने के लिए सरकार की पूर्व अनुमति ली जानी चाहिए।
8. प्राथमिक शिक्षा का उत्तरदायित्व नगरपालिका पर होना चाहिए और यदि यह चाहे तथा यदि उसके पास स्थान हों, तो उसे कुछ धन माध्यमिक विद्यालयों पर भी खर्च करना चाहिए।

पृथ्वी पर जब से मानव का उद्भव हुआ तब से मानव ने स्वयं के अस्तित्व के विषय में सोचा, जब से समूह में रहना प्रारम्भ किया। तभी से अपनी सुविधा के विभिन्न आयामों पर विचार करने लगा। समय और परिस्थिति ने उन आयामों का निर्धारण किया, स्वयं में परिवर्तन एवं परिशोधन किया। पंचायती राज की परिकल्पना भी इसी परिवर्तन का परिस्कृत रूप है जो प्राचीन काल से ही विद्यमान रही है और अपने को न केवल दृढ़तापूर्वक कायम रखा अपितु समय–समय पर सार्थक दिशा में परिवर्तन भी किया।

वैदिक काल

वैदिक काल में गांवों का महत्व बढ चुका था तदनुरूप ग्रामीण प्रशासन का महत्व बढना स्वाभाविक था। प्राचीन भारत में ग्राम प्रशासन का व्यापक दृष्टिकोण देखने को मिलता है क्योंकि प्राचीन भारत विकेन्द्रीकरण के सिद्धान्त पर आधारित था।

बौद्धकाल

बौद्धकाल (600 ई.पू. से 400 ई.पू.) में ग्रामों की शासन व्यवस्था सुनिश्चित और सुगठित थी। सम्पूर्ण जनपद के शासन की इकाई ग्राम थे ग्राम पंचायतों को ग्राम सभा कहा जाता था इसका मुखिया ग्रामयोजक होता था ग्रामयोजक का चुनाव सभा द्वारा होता था ग्राम से संबंधित सभी मामलों को सुलझाने का कार्य ग्रामयोजक के ऊपर था।

मौर्यकाल

मौर्यकाल में चन्द्रगुप्त मौर्य ने स्वायत्त शासन प्रणाली प्रचलित कर शासन के विकेन्द्रीकरण की नीति अपनायी थी। कौटिल्य के अर्थशास्त्र से यह प्रमाणित होता है कि राज्य ग्रामीण जीवन में न्यूनतम हस्तक्षेप करता था। मौर्ययुग में ग्रामीण प्रशासन पूर्णतः कृषि के साथ संबंध था एक गांव में 100 से 500 तक परिवार होते थे।

गुप्तकाल

गुप्तकालीन व्यवस्था में भी केन्द्रीकृत शासन व्यवस्था में ग्राम पंचायतों का विशेष महत्व था। ग्राम का क्षेत्र व सीमायें निश्चित थी ग्राम का सर्वोच्च अधिकारी ग्रामपति या महत्तर था। उसकी सहायता के लिए पंचायत होती थी। ग्राम पंचायत को ग्राम सीमा का निर्धारण करो की वसूली, सिंचाई उघान, मन्दिर, न्याय आदि हेतु अधिकार प्राप्त थे। प्रायः ग्रामों के बीच सीमा निर्धारण के विषय में झगडे हो जाते थे इनका निपटारा ग्राम पंचायतों द्वारा मिलकर किया जाता था।

राजपूतकाल

राजपूतकाल में तत्कालीन शासन (राज्य के विशाल होने पर) प्रान्तों, जिलों, अधिष्ठानों और ग्रामों में विभक्त होता था इस दृष्टि से शासन पद्धति गुप्तकालीन शासन पद्धति के आधार पर थी। विकेन्द्रीकरण की भावना पर शासन आधारित होने के कारण केन्द्रीय शक्ति को हमेशा खतरा बना रहता था।

शुक्रनीति

10वीं शताब्दी की कृति ''शुक्रनीति'' में भी ग्राम पंचायत का वर्णन किया गया है। शुक्र के मतानुसार पंचायत के समस्त सदस्य निर्वाचित होते थे। यह पंचायत प्रशासनिक और न्यायिक दोनों शक्तियों से युक्त थी।

सल्तनतकाल

सल्तनत काल में दिल्ली साम्राज्य बडा विशाल था जिसे शासन प्रबंधन की सुविधा के लिए अनेक भागों और उपभागों में बांटा गया था। सम्पूर्ण राज्य प्रान्तों में विभाजित था। प्रान्त शासन की सबसे बड़ी इकाई था। प्रारंभ इसे 'इक्ता' कहा जाता था अलाउद्दीन के शासन काल में इसे 'सूबा' कहा जानें लगा था प्रान्तों को भी प्रशासनिक दृष्टि से परगनों में बांट दिया गया था। परगनों को गांवों में बांटा गया था। गांव हो राज्य की सबसे छोटी प्रशासनिक इकाई था।

मुगलकाल

मुगलकाल में नगर का प्रशासन जिस अधिकारी के द्वारा चलाया जाता था। वह 'कोतवाल' कहलाता था। यह कोतवाल पुलिस संबंधित मामलों, दंड व्यवस्था तथा वित्तीय मामलों में सर्वोपरिसत्ता रखता था। इनमें ग्राम पंचायतों का प्रशासनिक स्तर अत्यन्त उत्कृष्ट था। ग्रामीण स्थानीय प्रशासन के क्षेत्र में इस काल में 'गांव' शासन की सबसे छोटी इकाई थी।

1773 का रेग्यूलेटिग एक्ट

1773 के रेग्युलेटिंग एक्ट द्वारा प्रेसीडेंसी नगरों–मद्रास, बम्बई और कलकत्ता में जस्टिस ऑफ पीस की नियुक्ति की गई। इनका प्रमुख कार्य शहर की सफाई व स्वास्थ्य की देखभाल करना था। इस अधिनियम द्वारा निगमों में कुछ परिवर्तन भी किये गये। स्थानीय स्वायत्त संस्थाओं में अधिक सुधार लाने एवं उनकी प्रगति को ध्यान में रखते हुए 1793 में अधिनियम संशोधित कर स्थानीय स्वशासन संस्थाओं को संवैधानिक आधार प्रदान किया।

1870 का मेयो प्रस्ताव

लार्ड मेयो के प्रस्ताव ने इस बात पर जोर दिया गया कि भारतीयों को प्रशासन से संबंध किया जाये करारोपण जांच आयोग (1953–54) ने ठीक ही कहा था। भारतीय को प्रशासन से संबंध करने की आवश्यकता ही वह कारण था जिसने प्रारंभिक ब्रिटिश शासन की इस देश में स्थायी स्वशासन की संस्थाओं की स्थापना करने के लिए प्रेरित किया।

1882 का रिपन प्रस्ताव

लार्ड रिपन को भारत में स्थानीय स्वशासन का जन्मदाता कहा जाता है और लर्ड रिपन के मई 1882 में पारित 'स्थानीय शासन संस्थाओं संबंधी प्रस्ताव को स्थानीय लोकतंत्र के संबंध में मेग्नाकार्टा' माना जाता है।

1919 का अधिनियम

1919 के भारत सरकार अधिनियम के लागू होने से स्थानीय स्वायत्त शासन एक हंस्तारित विषय बन गया जिसका नियंत्रण लोकप्रिय शक्ति के अधीन हो गया। केन्द्रीय सरकार के इस विषय में प्रान्तीय सरकारों को आदेश देने बन्द कर दिये और प्रत्येक प्रान्त को अपनी आवश्यकताओं के अनुसार स्थानीय स्वायत्त संस्थाओं का विकास करने की अनुमति मिल गई।

1935 का अधिनियम

1937 में 1935 भारतीय शासन अधिनियम का प्रान्तीय भाग लागू किया गया था और प्रान्तों में द्वैध शासन के स्थान पर, प्रान्तीय स्वायत्त शासन स्थापित किया गया इस काल में प्रान्तों ने स्थानीय निकायों के मामलों की जांच आररंभ की ताकि उन्हें स्थानीय मामलों के प्रवेश का उपयुक्त साधन बनाया जा सके यद्यपि विभिन्न प्रान्तों में इन जांच समितियों की सिफारिशों पर अमल नहीं किया गया, फिर भी स्थानीय शासन की लोकतांत्रिक कार्य करने की प्रवृत्ति निश्चित रूप से सर्वत्र विद्यमान थी मताधिकार के लिए नामित करने की प्रणाली का अन्त किया गया और मंत्रणात्मक कार्यों को कार्यकारी कार्यों से पृथक किया गया।

शोध का उद्देश्य

इस शोध का मुख्य उद्देश्य यह मानना है कि पंचायती राज व्यवस्था की ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि क्या है? प्राचीन भारत में पंचायती राज, वैदिक काल, बौद्धकाल, मौर्यकाल, गुप्तकाल राजपूतकाल, शुक्रनीति, सल्तनतकाल, मुगलकाल, 1773 का रेग्यूलेटिंग एक्ट, 1870 का मेयो प्रस्ताव, 1882 का रिपन प्रस्ताव, 1919 का अधिनियम, 1935 का अधिनियम में ऐतिहासिक काल में शासन के संचालन को किस प्रकार बतलाया गया है।

साहित्यावलोकन

भट्ट, आशीष, लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण एवं जनजातीय नेतृत्व, रावत पब्लिकेशन, जयपुर 2002, पृ. 13 में भारत में पंचायती राज का वृहत इतिहास रहा है यद्यपि उसका स्वरूप अलग रहा है। चूँकि शासन के स्वरूप में समय–समय पर अन्तर रहा है। अतः भारत में ग्रामीण स्थानीय शासन की संस्थाओं के स्वरूप में समय–समय पर विभेद होना एक स्वाभाविकता है वस्तुतः वर्तमान में कार्यरत पंचाायती राज संस्थाओं जैसी संस्थाओं की भारत में एक अनवरत एवं अजस्त्र परम्परा रही है। यद्यपि में उनमें क्षेत्रीय एवं ऐतिहासिक विभेद अवश्य रहा है। आदि को बतलाया गया है।

माहेश्वरी, आर.एस., 'भारत में स्थानीय शासन' लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा 2003, पृष्ठ 22 में शासकीय संगठन एवं स्वरूप चाहे जो रहा हो। पंचायती राज संस्थायें मानव की मनोवैज्ञानिक एवं व्यावहारिक आवश्यकताओं के रूप में विद्यमान रही है। मानव की सदैव यह इच्छा रही है कि जो भी सरकार हो वह उसके स्वयं के द्वारा शासित और अच्छी सरकार होनी चाहिए मानवमन की यह इच्छा, अतीतकाल से स्थानीय संस्थाओं के विकास का अन्तर्निहित दर्शन रही है के बारे में बतलाया गया है।

मैटकॉफ, सर चार्ल्स, रिप्रन्जटेटिव सलेक्ट कमीटी ऑफ हाउस ऑफ कोमन्स 1832, वोल्यूम तृतीय 84 पेज 331, राधाकुमुद मुकर्जी, लोकल गवर्नमेन्ट इन एनशिष्ट इण्डिया : ऑक्सफोर्ड कलेक्शन प्रेस, 1920, पृष्ठ 2–3 में चार्ल्स मेटकॉफ द्वारा 1830 में ग्रामीण शासन के संघर्ष में इंगित किये गए निम्नांकित विचार इसी तथ्य को प्रकट करते हैं।

''जहाँ कुछ भी नहीं टिकता, वहाँ वे टिके रहते हैं, राजवंश एक के बाद एक आते रहते हैं, एक क्रान्ति के बाद दूसरी क्रान्ति आती है। हिन्दू, पठान, मुगल, मराठा, सिक्ख व अंग्रेज सभी बारी–बारी से अपना शासन स्थापित करते रहे हैं। किन्तु ग्राम समाज ज्यों के त्यों बने रहते हैं।''

गौतम, डॉ. रायसखा, 'पंचायती राज एवं गाँधी का ग्राम स्वराज्य' आदित्य पब्लिशर्स, बीना (म.प्र.) 2000 पृष्ठ 176 में बतलाया गया है। भारत विश्व की वृहतम् लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था है। शासन व्यवस्था के ऊपरी स्तरों (केन्द्र एवं राज्यों) पर कोई भी लोकतांत्रिक तब तक सफल नहीं हो सकता जब तक की निचले स्तर पर लोकतांत्रिक मान्यताएं एवं मुख्य शक्तिशाली न हो यदि लोकतंत्र अर्थ जनता की समस्याएँ एवं उनके समाधान की प्रक्रिया में जनता की पूर्ण तथा प्रत्यक्ष भागीदारी है, तो

प्रत्यक्ष, स्पष्ट एवं विशिष्ट लोकतंत्र का प्रमाण उतना सटीक अन्यत्र देखने को नहीं मिलेगा जितना स्थानीय स्तर पर मिलता है।

सिंह, हेमन्त प्रताप, भारत में पंचायती राज व्यवस्था संरचना और विशेषताएँ, 24 अप्रेल 2019 में पंचायत भारतीय समाज की बुनियादी व्यवस्थाओं में से एक रहा है। वर्तमान में हमारे देश में 2.51 लाख पंचायते। जिनमें 2.39 लाख ग्राम पंचायतें, 6904 ब्लॉक पंचायतें और 589 जिला पंचायतें शामिल है। देश में 29 लाख से अधिक पंचायत प्रतिनिध हैं। भारत में पंचायती राज की स्थापना 24 अप्रेल 1992 से मानी जाती है। 73वें संविधान संशोधन अधिनियम के साथ इसको अन्तिम रूप प्राप्त हुआ था बताया गया है।

निष्कर्ष

अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि प्राचीनकाल से ग्रामीण आंचल के समुदाय आत्मनिर्भर रहे थे और पंचायतें सहकारिता आत्मनिर्भरता या स्वावलम्बन की ओर बढ रही थी लेकिन जब भारत औपनिवेषिक शासन में था तो कुछ खास शर्तों को पूरा करने वाले व्यक्ति ही वोट दे सकते थे। एवं चुनाव लड़ सकते थे।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *त्रिपाठी, डॉ. एस.पी., 'पंचायती राज व्यवस्था एवं गाँधी का ग्राम स्वराज्य' आदित्य पब्लिशर्स, बीना (म. प्र.) 2000.*
2. *पाण्डेय, डॉ. राजबलि, 'भारत में स्थानीय प्रशासन, कॉलेज बुक डिपो, जयपुर, 1999.*
3. *शर्मा, हरिशचन्द्र, 'भारत में स्थानीय शासन का इतिहास', कॉलेज बुक डिपो, जयपुर 1975–76.*
4. *प्रसाद, 'प्राचीन भारत', नई दिल्ली, 1990.*
5. *सिंह, मनोज कुमार, 'प्राचीन भारत में पंचायती राज के तत्व ऐतिहासिक सामाजिक विश्लेषण', आदित्य पब्लिशर्स, बीना (म.प्र.) 2000.*
6. *पाण्डेराम (स), 'पंचायती राज', जयपुर पब्लिशिंग हाउस, 1989, पृ. 32, मीना हूजा का लेख– एण्टिक्विटी ऑफ पंचायत्स : सम हिस्टोरिकल पर्स पेक्टिव्स*
7. *शर्मा, अशोक : भारत में स्थानीय शासन', आर.वी.एस. ए. पब्लिशर्स, जयपुर, 2002.*
8. *शर्मा, के.के., 'भारत में पंचायती राज प्रशासन', कॉलेज बुक डिपो, जयपुर, 2001.*
9. *माहेश्वरी, एस.आर., 'भारत में स्थानीय शासन', लक्ष्मी नारायण अग्रवाल पब्लिशर्स, आगरा, 2003.*
10. *जोशी, आर.पी. एवं मंगलानी रूपा, पंचायती राज के नवीन आयाम, यूनिवर्सिटी बुक हाउस, जयपुर, 2000.*